E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2023; 5(2): 33-36
Received: 28-01-2023
Accepted: 07-02-2023

अंकित जायसवाल
शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
अंकित जायसवाल
शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
उत्तर प्रदेश, भारत

लोकसंग्रहः एक दार्शनिक विमर्श

अंकित जायसवाल

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2023.v5.i2a.934

सारांश
भारतीय दर्शन में लोकसंग्रह या लोककल्याण की अवधारणा क्या हैं ? लोककल्याण का तात्पर्य क्या हैं ? क्या गीता के अतिरिक्त लोकसंग्रह का वर्णन कहीं और देखने को मिलता हैं ? लोकसंग्रही व्यक्ति कैसा होता हैं ? लोकसंग्रही के कर्म क्या हैं ? लोकसंग्रह के लिए मनुष्य को किन–किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता हैं ? इत्यादि प्रश्न मानव मस्तिष्क में उभरते हैं। इन्हीं सभी प्रश्नों को जानना मेरे शोध आलेख का प्रतिपाद्य विषय हैं।

कुटशब्दः लोकसंग्रह, सर्वभूतहिते, आसक्ति, कर्मयोगी, बोधिसत्व

प्रस्तावना

लोक कल्याण दो शब्दों के मेल से संयुक्त हुआ हैं लोक और कल्याण। यहाँ लोक का अर्थ हैं इहलोक पृथ्वी तथा कल्याण का तात्पर्य उत्थान/उन्नति। इस प्रकार इसका आशय हैं– सभी प्राणियों का उत्थान। इसे अन्य नामों से भी अभिहित किया जाता हैं जैसे– लोकसंग्रह, सर्वभूतहिते इत्यादि। लोकसंग्रह की अवधारणा प्रायः भगवद्गीता में परिलक्षित होती हैं। लोकसंग्रह का मूलाधार निष्काम कर्म योग हैं। निष्काम कर्मयोगी ही लोकसंग्रह से कर्म को संचालित करता हैं। लोकसंग्रही मनुष्य के समस्त कर्म मनुष्यजाति के उत्थान के लिए होते हैं उसका अपना कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता। लोकसंग्रही व्यक्ति में किसी प्रकार की राग–द्वेष, इच्छा, स्वार्थ नहीं होता वह तो अपने को केवल निमित्तमात्र समझता हैं तथा कर्म का संचालन करता हैं तथा उस कर्म के प्रति किंचितमात्र भी आसक्ति नहीं रखता हैं। लोकसंग्रह की व्याख्या विभिन्न विद्वान अपने–अपने मतानुसार करते हैं– आचार्य शंकराचार्य का कथन हैं कि ''लोको की कुमार्ग में प्रवृत्ति को रोकना ही लोकसंग्रह हैं।'' अर्थात् मनुष्य जाति को कुमार्ग की तरफ जाने से रोककर उन्हे सन्मार्ग की तरफ प्रेरित करना लोकसंग्रह कहलाता हैं।

तिलक जी कहते हैं– ''लोक स्योन्मार्ग प्रवृत्ति निवारणम्'' अर्थात् संसार में अज्ञानता के कारण इसी में उलझे मनुष्यों को सद्ज्ञान का मार्ग दिखाकर उन्हे उनके आत्मोन्नति के मार्ग में लगाना।

पं0 गिरिधर शर्मा शास्त्री कहते हैं– ''आसक्ति छोड़कर केवल लोकसंग्रह की दृष्टि से किया हुआ कर्म बन्धन में नहीं डालता। बन्धन में डालने वाली आसक्ति होती हैं। जब मनुष्य अपने समस्त कर्म अनासक्त बुद्धि से सम्पन्न करता हैं तो वह कर्म बन्धनमुक्त कर्म होता हैं।'' [1]

भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि ''मुझे इन तीनों लोकों में कोई भी कर्म शेष नहीं हैं तथा ऐसा कुछ भी नहीं हैं जो मुझे प्राप्त करना हैं अर्थात् सभी कुछ मेरे पास हैं फिर भी मैं लोकसंग्रह हेतु कर्म का आचरण करता हूँ।'' वे कहते हैं कि ''यदि मैं इस संसार में कर्म न करूँ तो सभी प्राणी मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेगें जिससे इस लोक में अव्यवस्था फैल जायेगी।'' [2] भगवान कृष्ण को भी कर्म करना पड़ता हैं वह भी इनसे मुक्त नहीं हैं वे सभी कर्म लोकसंग्रह की भावना से सम्पादित करते हैं। श्री अरविन्द कहते हैं कि ''गीता का उपदेश हैं कि हमें अपने कर्म से, भगवान की पूजा–अर्चना करना चाहिए, हमारे द्वारा सम्पादित समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पण करना चाहिए। क्योंकि सृष्टि की सम्पूर्ण गति तथा कर्मो के प्रति मनुष्य की प्रवृत्ति ईश्वर से ही प्रादुर्भूत हुई हैं तथा ईश्वर ने ही इसी सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार किया हैं और लोकसंग्रह के लिए, लोको को संगठित रखने के लिए ईश्वर स्वभाव के माध्यम से सम्पूर्ण कर्मों को परिचालित और गठित करते हैं।'' [3]

वह मनुष्य जिसने अपने समस्त कर्मो के फलो का परित्याग कर दिया हैं तथा जिसका किसी कर्म के फल प्रति आसक्ति नहीं हैं और जिसके सभी कर्म मानव कल्याणार्थ होते हैं उसका केवल एक मात्र उद्देश्य होता हैं व्यक्ति का आत्मोत्थान करना। सम्पूर्ण मानव जाति जो अज्ञानता, लोभ, मोह इत्यादि वृत्तियों के दलदल में फंसी हुई हैं उनको ज्ञान के मार्ग पर लाना तथा उन्हे इस बन्धनरुपी जगत से निवृत्त कराकर लोकसंग्रह के कार्य हेतु प्रेरित करना। गीता कहती हैं कि– ''जनक आदि विद्वानजन

भी आसक्तिरहित कर्म करके ही परमसिद्धि को प्राप्त किये हैं। उनका किसी कर्म में आसक्ति का भाव नहीं था वे निरासक्त होकर कर्म किये इस प्रकार लोकसंग्रह को देखते हुए तुम (पार्थ) कर्म करने की क्षमता रखते हो और निस्वार्थ भाव से बिना किसी कामना के कर्म को सम्पादित करो और मनुष्य जाति के कल्याणार्थ ही कर्म करो।'' [4] भगवान कहते हैं कि– ''जिस प्रकार एक अज्ञानी अपने कर्मो को करता हैं, उसी प्रकार का कर्म लोकसंग्रह के लिए करना चाहिए। परन्तु इनमें भेद यह हैं कि अज्ञानी जिन कर्मो को करता हैं उनके प्रति उसे आसक्ति रहती हैं जबकि आसक्तिरहित होकर जब कर्मो को किया जाता हैं तो वह लोकसंग्रह कहलाता हैं।'' [5] लोककल्याण के लिए कबीर जी अपने दोहे में भी कहते हैं–

वृक्ष कबहुँ न फल भखै, नदी न संचय नीर। परमारथ के कारने, साधु धरा शरीर।।

अर्थात् जिस प्रकार वृक्ष अपना फल कभी नहीं खाता, नदी अपने जल को स्वयं नहीं पीती। उसी प्रकार साधुजन या विद्वानजन भी स्वयं के स्वार्थ के लिए इस धरा पर नहीं आते उनका उद्देश्य लोककल्याण का होता हैं। वे किसी प्रकार की कामना से युक्त नही होते प्रत्युत उनका प्रयोजन केवल लोकोन्नति का होता हैं।

भर्तृहरि ने भी लोकसंग्रह के सन्दर्भ में इस प्रकार कहा हैं– ''स्वार्थो यस्य परार्थ एवं स पुमानेकः सामग्रणीः। इसका तात्पर्य बताते हैं कि परार्थ ही जिसका स्वार्थ हो गया हो, वही पुरूष साधुओं में श्रेष्ठ हैं। अर्थात् जो मनुष्य लोगों की भलाई के लिए सदैव तत्पर रहता हैं वही लोकसंग्रही कहलाता हैं। उसको किसी से कोई भी स्वार्थ की सिद्धि की प्राप्ति की इच्छा नहीं रहती उसके समस्त कार्य निःस्वार्थ होते हैं। इसका स्वार्थ इतना व्यापक हैं कि उसके स्व की परिधि के अन्दर विश्व के सभी प्राणी आ जाते हैं। तुलसीदास जी रामचरितमानस में भी लिखते हैं–

परहित बस जिन्ह के माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।। [6]

अर्थात् 'जिस मनुष्य के मन में दूसरो का हित की भावना बसती हैं उस मनुष्य के लिए इस संसार में कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं हैं उसके समस्त कार्य अपने आप सुलभ हो जाते हैं।'

जिस प्रकार गीता में लोकसंग्रह के विषय में चर्चा की गई हैं उसी प्रकार अन्य दर्शनों में भी इसके समान समानता लिए हुये अन्य सिद्धान्त भी हैं। जिसमें बौद्ध दर्शन के बोधिसत्व का विचार, जीवन्मुक्त का विचार तथा समकालीन भारतीय दर्शन में महात्मा गांधी तथा बिनोवाभावे के द्वारा दी गई सर्वोदय की अवधारणा भी लोकसंग्रह से साम्यता रखती हुई प्रतीत होती हैं। इसमें भी मनुष्य जाति के उत्थान की बात की गई हैं। इसके अतिरिक्त समकालीन भारतीय दर्शन में श्री अरविन्द के अतिमानसिक मानव, रामकृष्ण परमहंस के विज्ञानी भी लोककल्याण के लिए ही कार्य करते हैं ऐसा ज्ञात होता हैं। पाश्चात्य दर्शन में भी कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जिनका सिद्धान्त लोककल्याण की भावना से कुछ सीमा तक साम्यता रखता हैं। इसमें अक्जेण्डर के डीटी, वर्गसॉ के ग्रैन्डमिस्टिक, ग्रीन का सर्वकल्याणवाद हैं। इन सभी दार्शनिकों ने भी मानव के आत्मकल्याण की बात को स्वीकार किया हैं। इस शोध आलेख में हम सभी को न लेकर केवल बौद्ध दर्शन के बोधिसत्व तथा महात्मा गांधी के सर्वोदय की तुलना लोकसंग्रह से करने का प्रयास करेगें। ये अपने दर्शन में लोकसंग्रह को किस प्रकार विवेचना करते हैं।

बोधिसत्व को बौद्ध दर्शन के महायान सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं। जिनके अन्तर्गत विज्ञानवादी तथा शून्यवादी विचारधारा के समर्थक आते हैं। बोधिसत्व का तात्पर्य हैं कि जिस मनुष्य ने अपने आप को इस मायारूपी जगत से मुक्त कर लिया हैं जिसके अन्तःकरण में किसी प्रकार की आसक्ति या तृष्णा का अभाव हो गया हैं। ऐसा मनुष्य इस बन्धनरूपी जगत का ज्ञान प्राप्तकर स्वयं इससे ऊपर उठ गया हैं और जिसका कार्य अन्य मनुष्यों के उत्थान का हैं। शान्तिदेव बोधिसत्व को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं– ''सौगत मार्ग के अनुष्ठान से जिस पुण्य संभार का मैंने अर्जन किया हैं उसके परिणाम स्वरूप यही आकांक्षा हैं कि प्रत्येक प्राणी के दुःख शान्त हो जाये।'' [7] बोधिसत्व के मन में सभी प्राणियों के लिए करूणा का अम्बार होता हैं जिससे वह सभी प्राणियों के प्रति प्रेम भाव रखता हैं तथा उनके दुःखों से उनको मुक्ति दिलाने का प्रयास करता हैं। बोधिसत्व मानवता की उच्चतम अवस्थिति हैं। इसमें मानव अपना पूर्णतः विकास करके तथा उससे प्राप्त शक्तियों को जनकल्याण के लिए उत्सर्ग करता हैं। इस संसार का परममंगल ही बोधिसत्व के जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता हैं। सम्पूर्ण जगत में चींटी से लेकर हाथी तक जब तक एक भी प्राणी दुःख की वेदना से ग्रसित रहता हैं तब तक बोधिसत्व अपनी मुक्ति की अभिलाषा नहीं करता। उसका मन करूणा से इतना भरा होता हैं कि वह दुःखी प्राणियों के दुःख की किंचितमात्र आँच से भी द्रवित हो जाता हैं। लोकसंग्रह की इच्छा रखने वाले मनुष्य को इस श्लोक से अक्षरशः बताया जा सकता हैं।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्रणिनां अर्तिनाशनम्।।

अर्थात् हैं प्रभु! मुझे राज्य की कामना नहीं हैं, न ही स्वर्ग सुख की अभिलाषा हैं तथा मुक्ति की भी इच्छा नहीं हैं। मेरी एक मात्र आकांक्षा यही हैं कि दुःख से संतप्त प्राणियों का कष्ट समाप्त हो जाये। लोक कल्याण की आकांक्षा रखने वाले साधक को ऐसे किसी वस्तु या सम्पदा का लालच नहीं होता वह तो इन सबसे अपने को मुक्त कर चुका होता हैं। उसे यह ज्ञात होता हैं कि ये सब क्षणिक सुखदायी हैं। उसका एकमात्र लक्ष्य सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हैं।

बोधिचर्यावतार में कहा गया हैं कि– ''बोधिचित्त ग्रहण करने वाला मनुष्य प्रतिज्ञा करता हैं कि अब उसके समस्त कार्य प्राणी मात्र के हितार्थ होंगे, अपने पूर्व किये गये पाप को नष्ट करके वह पाप नहीं करेगा, तथा वह अपना सम्पूर्ण जीवन परोपकार तथा लोककल्याण के लिए समर्पित कर देगा।'' [8] बोधिसत्व का जीवन लोककल्याण, करूणा तथा प्रज्ञा से अनुप्राणित रहता हैं। प्राणियों को दुःख से त्राण दिलाने के लिए उसमें एक प्रकार की विलक्षण शक्ति का प्रादुर्भाव होता रहता हैं। बोधिसत्व, लोककल्याण करने के लिए संसार के आवागमन की प्रक्रिया से भयभीत नहीं होते। जन्म मृत्यु के भवचक्र में होने पर भी उनका मन निर्मल रहता हैं तथा किसी तरह की कुप्रवृत्तियाँ उनके अन्दर नहीं आती। बौद्ध दर्शने में यहाँ तक स्वीकार किया गया हैं कि बोधिसत्व अपने पुण्य कर्मो के माध्यम से अन्य प्राणियों को दुःख से मुक्त कर देता हैं और उनके द्वारा किये गये पाप कर्मो का स्वयं उपभोग करता हैं। कर्मो के इस आदान–प्रदान की प्रक्रिया को 'परिवर्त्त' नाम से अभिहित करते हैं। बौद्ध दर्शन का यह सिद्धान्त नवीन प्रतीत होता हैं क्योंकि भारतीय दर्शन में अन्य दर्शन ऐसे किसी सिद्धान्त को प्रश्रय नहीं देते हैं। अन्य दर्शन व्यक्ति के कर्मो के आधार पर पाप–पुण्य की बात करते हैं। अन्य दर्शन यह स्वीकारते हैं कि प्रत्येक प्राणी को उसके कर्मानुरूप ही फल प्राप्त होता हैं उसके जैसे भी कर्म हों पापात्मया पुण्यात्मक उनके आधार पर फल मिलता हैं।बोधिसत्व की भावना को अभिव्यक्त करते हुए शान्तिदेव उद्धृत करते हैं कि ''मैं अनाथो का नाथ बनूँगा, यात्रियों का सार्थवाह, पार जाने वालो के लिए नौका, सेतु और धड़नियाँ बनूँगा। प्रकाश की अभिलाषा रखने वालों के लिए दीपक बनूँगा, जिन्हे शय्या की इच्छा हैं उसके लिए शय्या बनूँगा। इस प्रकार मैं सभी प्राणियों की सेवा करूँगा।'' [9]

बोधिसत्व का सम्पूर्ण जीवन मानवता को अर्पित होता हैं। वह समाज से पृथक किसी गुफा में बैठकर स्वयं के मोक्ष की कामना

नहीं करता अपितु समस्त संसार के दुःखी प्राणियों के प्रति प्रेम, करूणा इत्यादि भावनाओं को व्यक्त करता हैं तथा उनके कष्टों के निवारण का प्रयास करता हैं। उसका उद्देश्य सम्पूर्ण प्राणियों का निर्वाण प्राप्त कराना हैं। वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर सकता हैं परन्तु वह ऐसा न करके संसार में दुःख, पीड़ा, कष्ट से संतप्त प्राणियों के लिए मोक्ष के मार्ग का निर्माण करता हैं। उनके दुःखों को दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहता हैं। ''बोधिसत्व दुःख से पीड़ित मनुष्य जाति के प्रति अत्यन्त प्रेम के हेतु निर्वाण प्राप्त करने में विलम्ब करता हैं।'' [10] बोधिसत्व का लक्ष्य हैं– मानवता की सेवा करना। बोधिसत्व एक प्रकार का नैतिक आदर्श हैं। इसके नैतिक आदर्श में मानववाद, सार्वभौमवाद और लोककल्याण की भावना निहित हैं। बोधिसत्व सर्वमुक्ति के लिए निरन्तर बार–बार जन्म ग्रहण करता हैं और यह मनुष्य जाति के कल्याण के लिए तत्पर रहता हैं इस प्रकार इसका नैतिक आदर्श स्वार्थवाद न होकर परार्थवाद हैं।डा0 रामधारी सिंह दिनकर बोधिसत्व के विषय में कहते हैं कि ''जन्म और मृत्यु ये निश्चित रूप से दुःख हैं, किन्तु इन दुःखों से पलायन करने वाला मनुष्य जगत की सेवा के योग्य नहीं रह जाता। व्यक्ति की मुक्ति हो जाने पर सम्पूर्ण संसार की मुक्ति नहीं होती। इस प्रकार संसार को दुःखमय त्यागकर वैयक्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेना एक प्रकार का स्वार्थ हैं। जब तक इस विश्व में एक भी मनुष्य निर्वाण से दूर हैं, तब तक साधक को चाहिए कि वह 'बुद्धत्व' (निर्वाण प्राप्त) को न ग्रहण करके 'बोधिसत्व' की कोटि में बना रहे।'' [11] इस प्रकार बौद्ध दर्शन में भी लोककल्याण के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ हैं। बोधिसत्व भी सभी कर्मो को लोकसंग्रह की भावना से ही अभिप्रेरित होकर करने को कहता हैं।

जिस प्रकार लोकसंग्रह या लोककल्याण की भावना गीता, बौद्धदर्शन में देखने को मिलती हैं उसी प्रकार इसको महात्मा गांधी के दर्शन में भी देखा जाता हैं। महात्मा गांधी ने अपने दर्शन में इसे 'सर्वोदय' के नाम से अभिहित किया हैं। उनके दर्शन में भी लोकहित, लोककल्याण की भावना निहित हैं। सर्वोदय का तात्पर्य ही हैं– 'सब का उदय', सभी का उत्थान। सर्वोदय का उद्देश्य एक ऐसे समाज या राष्ट्र का निर्माण करना हैं जिसमें आर्थिक विषमता, दरिद्रता, शोषण इत्यादि के लिए किंचितमात्र भी स्थान न हो तथा सभी प्राणी उन्नत, समृद्ध हो सके। इसके लिए वेदों में वर्णित 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की विचारधारा प्रतिपादित होती हैं। जिसके अनुसार, सभी मनुष्य सुखी हो, सभी का कल्याण हो। इसके अन्तर्गत किसी वर्ग विशेष की उन्नति को न कहकर सम्पूर्ण मानवजाति के कल्याण को अभिव्यक्त किया गया हैं। गांधी जी को सर्वोदय के लिए प्रेरणा रस्किन की पुस्तक 'अन टू द लास्ट' से मिली। तथा रस्किन की पुस्तक का सार 'सभी के कल्याण' को निर्देशित करता हैं। सर्वोदय का उद्देश्य केवलमात्र एक स्तर का उत्थान नहीं अपितु सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्तरों की उन्नति अर्थात् सभी स्तरो के उत्थान की बात करता हैं। इसे एक शब्दों में अभिव्यक्त करें तो सर्वोदय का लक्ष्य सर्वांगीण विकास (उत्थान) ही हैं। गांधी जी ने सर्वोदय की अवधारणा को इस प्रकार व्यक्त किया हैं– ''जैसे हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के मिलने से जल की उत्पत्ति होती हैं, उसी प्रकार आत्मज्ञान और विज्ञान के मेल से सर्वोदय की अभिव्यक्ति होती हैं।'' [12] विनोबा जी सर्वोदय के सन्दर्भ में कहते हैं कि– ''सर्वोदय समाज के कुछ मनुष्यों का या बहुत मनुष्यों का या अधिकांश मनुष्यों के उदय की बात नहीं करता। हम उच्च–निम्न, सबल–निर्बल, विद्वान–मूर्ख सभी के कल्याण से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं।'' सर्वोदय को व्यापक अर्थ में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की संज्ञा दी जाती हैं। [13] इसका तात्पर्य यह हैं कि हम सब उस परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं। हम सभी लोग एक ही परिवार के हैं। जिस तरह परिवार का प्रत्येक सदस्य अन्य सदस्यों के सुख या हित की कामना करता हैं और उससे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता हैं उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को सभी के सुख और कल्याण की इच्छा करनी चाहिए और उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। सर्वोदय की अवधारणा एक गतिशील धारणा हैं जो किसी वर्ग, जाति, देश, समुदाय तक ही सीमित न होकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक अवधारणा के रूप में सम्पूर्ण जगत का कल्याण चाहती हैं। विनोबा जी का कथन हैं कि ''सर्वोदय, सर्वोत्तम धर्म तथा 'सर्वोदय मिदं तीर्थम्' हैं। और यह उचित भी प्रतीत होता हैं। यदि विश्व के सभी धर्मो का गहराई से चिन्तन किया जाये, तो उसका सार यही होता हैं, सभी का उदय, सभी का कल्याण और सभी का सुख।'' [14] गांधी जी यह स्वीकार करते हैं कि नैतिकता के आदर्श को प्राप्त करके ही सर्वोदयी समाज को स्थापित किया जा सकता हैं। जब तक मनुष्य का नैतिक विकास नहीं हो जाता, तब तक समाज में सर्वोदय की विचारधारा को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। सर्वोदय को सफल बनाने के लिए अहिंसात्मक मार्ग पर चलना होगा तथा अहिंसात्मक ढंग से विकेन्द्रीकरण करना होगा। अहिंसा के द्वारा ही सर्वोदय को प्राप्त किया जा सकता हैं। सर्वोदय की अवस्था या स्थिति को मनुष्य तभी प्राप्त करता हैं जब उसके अन्दर से यह भावना स्वतः प्रेरित होती हैं किसी मनुष्य के ऊपर दबाव डालकर उसे सर्वोदय के विचारधारा की तरह उन्मुख करना अन्याय हैं। इसमें व्यक्ति स्वयं ही अन्तरस्थः रूप से प्रेरित होकर लोकोपकार करता हैं तथा समाज कल्याण में अपनी अहम भूमिका निभाता हैं। गांधी जी अपने हरिजन पत्रिका में कहते हैं कि– ''हमें सम्पूर्ण समाज को परिवर्तन करना हैं तथा इसके लिए किसी प्रकार की हिंसा न करके अहिंसात्मक क्रान्ति का सहारा लेना हैं। हमें एक ऐसे समाज का निर्माण करना हैं जो वर्ग विहीन, शोषणहीन तथा भेदभाव रहित अर्थात् एक रस समाज को स्थापित करना हैं, जो सबके दुःख–सुख में समान भागीदारी अदा कर सके, जो एक भूमि के आधार पर खड़ा होगा।'' [15]

सर्वोदय के साधन के रूप में आत्मसंयम का होना बहुत महत्वपूर्ण हैं। अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर जितनी आवश्यकता हो उतना ही उपयोग करें तथा अपने आप को आध्यात्म तथा योग के मार्ग में लगाना चाहिए जिससे वे इन्द्रियों को नियंत्रण कर आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का भोग न कर सके और निर्धन मनुष्य भी समाज में अपनी दयनीय स्थिति को सुधार सके। विनोबा भावे कहते हैं– ''मनुष्य को अपने विचार तथा जिह्वा पर नियंत्रण रखना चाहिए। मनुष्य भोग करे किन्तु अति से बचें।'' गांधी जी न्यासिता का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, समस्त सम्पत्ति ईश्वर की हैं तथा जिनके पास अत्यधिक धन हैं वह उसके न्यासी हैं। उनका संरक्षण करना ऐसे मनुष्यों का दायित्व हैं तथा उस सम्पत्ति को सामाजिक हित के कार्यो में लगाये। इसके अतिरिक्त उस सम्पत्ति को गरीबो में वितरित कर दें, और लोककल्याण के लिए सदैव तत्पर रहें। धनाढ्य वर्ग के लिए विनोबा जी अपने शब्दों में कहते हैं कि– ''धनी लोग पहले ही गिरे हुए हैं, और गरीब कभी उठे नहीं हैं। इसलिए धनाढ्य व्यक्ति को नैतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से ऊपर उठाना हैं जिससे वे आवश्यकता से अधिक धन का समाज के शोषित या निर्धन वर्गो के लिए परित्याग कर सकें।''

गांधी जी यह मानते थे कि जिस आचरण से किसी एक मनुष्य का भी अहित होता हैं वह आचरण किसी और का हित करे भी तो अच्छा नहीं हैं क्योंकि मानवता के स्तर पर हम सभी इस पृथ्वी पर एक परिवार की तरह हैं। गांधी के अनुसार, ''सभी का अधिक से अधिक भला करना ही एक सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवतापूर्ण कार्य हैं और यह कार्य स्वार्थ त्याग से ही अमल में लाया जा सकता हैं।'' [16] इस प्रकार, मनुष्य जाति के कल्याण के लिए निज स्वार्थो को त्यागकर अपने को लोगों की भलाई के लिए उन्नत करना चाहिए। लोकोपकार के लिए त्याग करना

पड़ता हैं। एक त्यागी ही लोककल्याण कर सकता हैं बिना त्याग के लोगों की भलाई नहीं की जा सकती त्याग और परोपकार में एक पूरक सम्बन्ध परिलक्षित होता हैं। सर्वोदय का लक्ष्य यही हैं कि मनुष्य का विकास हो और उनका सभी क्षेत्रों में सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि में उत्थान हों। वह अपने आप को विकास के मार्ग के लिए उन्नत करें तथा सभी का विकास होने से एक रामराज्य की स्थापना हो। रामराज्य एक ऐसा राज्य होगा जिसमें किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा सभी सुखपूर्वक अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करेगें किसी प्रकार की समाज में वैमनस्यता व्याप्त नहीं होगी। सभी मनुष्य प्रेम, अहिंसा, निःस्वार्थ भावना से समाज में रहे और सभी का कल्याण हों। सर्वोदय की अवधारणा 'सर्वभूतहितेरता' के रूप में कार्य करती हैं।

अब यदि गीता, बौद्ध तथा गांधी के लोककल्याण की अवधारणाओं की तुलना की जाये तो ये एक दूसरे से अत्यधिक साम्यता रखते हैं ऐसा प्रतीत होता हैं। गीता का लोकसंग्रह, बौद्ध का बोधिसत्व तथा गांधी का सर्वोदय का सिद्धान्त तीनों मनुष्यों के उत्थान या मनुष्य जाति के कल्याण की बात करते हैं। ये तीनों लोकोपकार के लिए कार्य करने को स्वीकार करते हैं तथा इनके आधार पर मनुष्य के समस्त कर्म लोकहित की भावना के आधार पर करने चाहिए जिससे लोगों की भलाई हों। इस स्तर पर यह तीनों तो साम्यता रखते हैं किन्तु इनमें कुछ वैषम्यता भी दिखलायी पड़ती हैं। गीता इन दोनों विचारकों से पूर्व प्रचलित हुई ईश्वर द्वारा गाया गया गीत हैं। गांधी गीता से बहुत प्रभावित थे उनके सिद्धान्त गीता से अत्यधिक मात्रा में लिये गये हैं। वे स्वयं कहते हैं कि जब वे किसी संकट या दुविधा की स्थिति में होते हैं तो वे गीता माता की शरण लेते हैं तथा उनको पढ़ते हैं और उनकी समस्या का निवारण गीता के द्वारा हो जाता हैं। ऐसा ज्ञात होता हैं कि गांधी के सर्वोदय का सिद्धान्त जो उन्होंने रस्किन की पुस्तक से ली, जिससे ऐसा प्रतीत होता हैं कि रस्किन भी गीता से प्रभावित रहे होंगे जिससे उन्होंने अपने पुस्तक में ऐसी विचारधारा को प्रश्रय दिया। गांधी स्वयं कहते हैं कि 'मैं कोई नया दर्शन या पन्थ नहीं बना रहा हूँ अपितु भारतीय ऋषियों, मुनियो, विद्वानो ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं उन विचारों को मैं लोगों के समक्ष रख रहा हूँ तथा यह प्रयास करता हूँ कि मनुष्य इसी के आधार पर अपने जीवन को आयाम प्रदान करें।' गीता का लोकसंग्रह का सिद्धान्त, गांधी के सर्वोदय से ज्यादा संगत लगता हैं। गीता का साधक जो लोकसंग्रह के लिए प्रयास करता हैं उसका इस विश्व में कोई कार्य शेष नहीं हैं। वह तो बस लोगों के कल्याण निमित्त कार्य करता हैं। स्वयं श्री कृष्ण भी कहते हैं कि वह भी लोगों के कल्याण हेतु इस धरा पर अवतरित हुए हैं और ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उन्हे प्राप्त न हो, फिर भी उनको समाजहित में कार्य करना पड़ता हैं। लेकिन सर्वोदय की विचारधारा को मानने वाले अन्य कार्यों को भी करते हैं। गीता जहाँ समस्त कर्म ईश्वरार्पण बुद्धि से करती हैं, गांधी के दर्शन में वह परिलक्षित नहीं होता। अतः गांधी का सर्वोदय, गीता का एक अंशमात्र है गीता का दर्शन अत्यधिक व्यापक है।

गीता के लोकसंग्रह तथा बौद्ध के बोधिसत्व में कुछ साम्यता तो हैं परन्तु बोधिसत्व में कुछ कमियां देखने को मिलती हैं जिससे वह संगत नहीं लगता। बौद्ध दर्शन आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता वह क्षणिकवाद को मानता हैं जिससे ज्ञात होता हैं कि यह शरीर क्षण–क्षण भर में परिवर्तित होता हैं तो फिर ऐसी स्थिति में नये–नये विचारों का भी अविर्भाव होता होगा तो उस साधक को कैसे ज्ञात होगा कि वह लोककल्याण के लिए कार्य कर रहा हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कर्म की एक नवीन धारणा दृष्टिगत होती हैं जिसे 'परिवर्त्त' कहा गया हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई मनुष्य कितना भी पाप करें यदि बोधिसत्व का साधक चाहे तो वह उस मनुष्य के पापों को स्वयं लेकर उसे अपने पुण्य प्रदान कर सकता हैं। यदि यह मत स्वीकार कर लिया जाये तो फिर कर्म का सिद्धान्त पूर्णतः नष्ट हो जायेगा। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्म के अनुसार ही फलोपभोग करना पड़ता हैं। ऐसा व्यवहारिक जीवन में भी सम्भव नहीं हैं कि मैं यदि किसी बैंक को लूटकर पाप कर्म करता हूँ तो कोई मनुष्य मेरे इस अपराध को अपने ऊपर ग्रहण कर लें। यह कर्म के नियम को विध्वंस कर देगा। इस प्रकार बौद्ध दर्शन के बोधिसत्व को स्वीकार करना उचित नहीं प्रतीत होता। अतः गीता के लोकसंग्रह की अवधारणा को मानव जीवन में स्वीकार किया जा सकता हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि गीता के लोकसंग्रह की अवधारणा, बौद्ध दर्शन के बोधिसत्व तथा गांधी के सर्वोदय से अधिक संगत प्रतीत होती हैं। इसमें किसी प्रकार की असंगति दृष्टिगत नहीं होती। गीता यही शिक्षा भी प्रदान करती हैं कि मनुष्य सभी निम्न प्रवृत्तियों राग–द्वेष, आसक्ति इत्यादि को त्यागकर, परोपकार, दया, करूणा को मानव जीवन में स्थान दें तथा सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए मनुष्य जाति के हित में समस्त कर्म सम्पादित करें। गीता में भगवान कृष्ण भी कहते हैं कि "जब–जब धर्म का पतन तथा अधर्म का उत्थान होता हैं, तब–तब मैं (स्वयं भगवान) इस संसार में प्रकट होता हूँ और साधु, सन्तों, सन्मार्गी की रक्षा कर पाप करने वाले मनुष्यों का अन्त करता हूँ। और सभी के लोककल्याण के लिए युग–युग में सदैव प्रकट होता हूँ।" [17] इस प्रकार कृष्ण भगवान भी लोकहित की रक्षा एवं भलाई के लिए इस धरा पर अवतरित होते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. पं0 गिरिधर शर्मा शास्त्री, गीता प्रवचन, गीता व्याख्यामाला, पृ0 381
2. गीता, अध्याय 3/22–23
3. गीता प्रबन्ध, पृ0 551
4. गीता, 3/20
5. गीता, 3/25
6. श्रीरामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा 31, चौपाई 5
7. बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ0 121
8. बोधिचर्यावतार, 2/7
9. बोधिचर्यावतार, 3/17
10. बोधिचर्यावतार, पृ0 492
11. डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 149
12. गांधी मार्ग पत्रिका, खण्ड 21/14, पृ0 2
13. शंकरराव देव, सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र, पृ0 2
14. विनोबा, व्यक्तित्व और विचार, पृ0 326
15. गांधी, हरिजन पत्रिका
16. भगवान दास केला, समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदय, पृ0 75
17. गीता, 4/7–8